उ.प्र. हिन्दी संस्थान द्वारा 'धर्मयुग सर्जना पुरस्कार' से सम्मानित

कथा प्रधान त्रैमासिकी

निकट - 34

मूल्य : ₹ 40/-

जनवरी-अप्रैल 2023

संपादक : कृष्ण बिहारी

किताबें जो खूब पढ़ी गईं...

निकट

कथा-प्रधान त्रैमासिकी

उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा 'धर्मयुग सर्जना पुरस्कार' से सम्मानित

संयुक्त अरब इमारात से शुरू अब भारत से प्रकाशित

वर्ष-16, अंक - 34, जनवरी-अप्रैल 2023, मूल्य-₹40

संस्थापक
अशोक कुमार

सलाहकार
राजेन्द्र राव

संपादक
कृष्ण बिहारी

उप-संपादक
रामनारायण त्रिपाठी, लखनऊ
धनंजय सिंह
राधेश्याम यादव, अबू धाबी

सहयोगी-राजवंत राज,

रियाज़ अहमद
पारुल तोमर

व्यवस्थापक
अभिनव त्रिपाठी

कानूनी सलाहकार
राजेश तिवारी एडवोकेट
2/241, विजय खण्ड,
गोमती नगर, लखनऊ

आवरण - पारुल तोमर

रेखांकन - शशि भूषण बडोनी, मार्टिन जॉन

मूल्य :
भारत में 40/- रुपये
खाड़ी में 20 दिरहम
यू.के. और अमेरिका में 5 डॉलर

सदस्यता शुल्क
1 वर्ष के लिए = रु 500/-
3 वर्ष के लिए = रु 1500/-
निम्न खाता सं. में
नगर / चेक / डी.डी. जमा करें
बैंक का नाम : बैंक ऑफ बड़ौदा
शाखा : सराय मसवानपुर ब्रांच, कानपुर
खाता सं. Krishna Behari Tripathi
28050100010192
IFSC : BARB0SAPRBS

रचनाएं भेजने का पता
निकट कार्यालय-
HIG-46, B BLOCK, PANKI
KANPUR-208020
Mo. 6307435896
ईमेल:
krishnatbihari@yahoo.com

इस अंक में...

संपादकीय - *समय से बात* - वो सुबह कभी तो आयेगी -02
पिछले अंक पर प्रतिक्रिया-
समृद्ध अंक में विविध रंग दिखे -04
पुस्तक के साथ यात्रा ..
गो-दान (1936) - कमल किशोर गोयनका -07
चित्रलेखा (1934) - डॉ. अमिता दुबे -22
त्यागपत्र (1937) - श्याम मिश्रा, अरुण सिंह -25,28
शेखर एक जीवनी (1941) - डॉ. राकेश शुक्ला -32
गुनाहों का देवता (1949) - डॉ. पारुल तोमर -34
मृगनयनी (1950) - डॉ. सुधा रानी पांडेय -38
वयं रक्षामः (1951) - प्रियंका गुप्ता -42
सारा आकाश (1952) - विजय पुष्पम -47
मैला आँचल (1954) - मो. दानिश -49
बूंद और समुद्र (1956) - नवनीत मिश्र -54
झूठा सच (1958) - निरूपमा सिंह -59
आधा गांव (1966) - जयनन्दन -63
मित्रो मरजानी (1967) - सुभाष सिंगाठिया -67
राग दरबारी (1968) - मनीष वैद्य -71
तमस (1973) - रीता त्रिवेदी -75
कसप (1982) - रत्ना श्रीवास्तव -78
काला जल (1983) - पंकज शर्मा -82
काल कथा (1998) - प्रताप दीक्षित -86
ग़ालिब छुटी शराब (2000) -राजेन्द्र राव -91
कितने पाकिस्तान (2000) - कौशल पाण्डेय -93
अंतिम अरण्य (2000) - निर्देश निधि -96
आख़िरी कलाम (2003) - पंकज सुबीर -103

अगला अंक - निकट 35 / मई-अगस्त 2023

स्वामी, सम्पादक कृष्ण बिहारी एच.आई.जी. - 46, पनकी, बी ब्लाक, कानपुर - 208020 से प्रकाशित
मुद्रक अमन प्रकाशन कानपुर- 9415475817, 8419891954

संपादकीय

समय से बात

वो सुबह कभी तो आएगी .....

पिछले कई वर्षों से मेरे ही नहीं बल्कि प्रायः सभी साहित्यकारों के मन में पाठकीयता के कम होते जाने का सवाल उठता रहा है । 1990 के आस-पास इलेक्ट्रॉनिक विकास ने जड़ जमा ली और उसके बाद तो न जाने कितनी ही वस्तुएँ सपना हो गईं । कंप्यूटर और मोबाइल के आने के बाद रेडियो , कैमरा , घड़ियाँ और स्याही भरकर लिखने वाली कलम आदि ,एक-एक करके इस तरह गायब हुए कि अब तो उनका अता-पता भी नहीं मिलता । पेड़ बचाओ ने कागज बचाओ के नाम पर पेपरलेस सभ्यता को संस्कृति बनने की राह पर डाल दिया । कहाँ तो पेड़ों की छाल पर लिखकर पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रख जाते थे और कहाँ लुगदी बनते-बनते लापता होने की कगार पर आ गए । इसके बावजूद किताबें प्रकाशित हो रही हैं ।हाल ही में दिल्ली में सम्पन्न हुए विश्व पुस्तक मेले के बारे में जो खबरें अखबारों में आईं उनसे सूचना मिली कि पुस्तकों की रिकॉर्ड बिक्री हुई है । मतलब साफ है कि पुस्तकें बिक रही हैं । आए दिन रचनाकारों द्वारा अपनी नई किताब के प्रकाशन की सूचना फेस बुक तथा अन्य माध्यमों से दी जा रही है । प्रकाशक अपने नए प्रकाशनों की सूची जारी कर रहे हैं । यहाँ फिर सवाल उठता है कि इन किताबों को खरीदता कौन है ? इन्हें आख़िर पढ़ कौन रहा है ?बड़े संस्थानों की पत्रिकाएँ बंद होती गई हैं ।समाचार-पत्रों में साहित्य के पन्ने पहले तो पृष्ठ में बदले फिर कॉलम हुए और अब तो वे भी लुप्त प्राय हैं । लघु पत्रिकाओं के सदस्य अजन्मे हैं और बड़े पाठक वर्ग तक इन पत्रिकाओं की पहुँच नहीं है जबकि शिक्षा के साथ-साथ समाज का आर्थिक स्तर भी काफी सुधरा है । एक पत्रिका को न खरीद पाने का कारण मैं महंगाई को तो कदापि नहीं मानता । लोगों के पास पुस्तकें , पत्रिकाएँ पढ़ने का समय नहीं है , यह भी एक तर्क दिया जाता है और तब मैं सोचता हूँ कि दिन और रात के चौबीस घंटों में लगभग 18 घंटे मोबाइल पर उलझी दुनिया के पास क्या सचमुच समय नहीं है ? तब मुझे साहित्य से समाज के दूर होते जाने का एकमात्र कारण सशक्त इलेक्ट्रानिक माध्यमों द्वारा कमज़ोर माध्यम का खा लिया जाना लगता है । टी वी के पर्दे ने सिनेमा को बड़े पर्दे से उतार दिया । मनोरंजन के सड़े-गले कार्यक्रमों ने परिष्कृति रुचि को खा डाला अन्यथा क्या कारण है कि 1937 में जब चित्रलेखा उपन्यास प्रकाशित हुआ और उसकी माउथ टू माउथ पब्लिसिटी हुई तो उसकी करोड़ों प्रतियाँ बिकीं और आज तथाकथित लेखकों की किताबों के संस्करण 300 प्रतियों से अधिक के नहीं होते और ये प्रतियाँ भी बिकने के बाद कहाँ पड़ी रहती हैं उसका भी पता-ठिकाना अज्ञात है । लुप्त होती पाठकीयता पर कई बार अपने साथी रचनाकारों से हुई बातचीत में दो बातें सामने आईं। एक - जो मानसिक भोजन पहले केवल पुस्तकों के जरिए मिलता था वह अब अनेक माध्यमों से मिलने लगा और दूसरे आठवें दशक के बाद की पीढ़ी के सामने जीवनयापन से जुड़े संघर्ष इतने जटिल होते गए कि उसके सामने अपने लिए विकल्पों की तलाश में हिन्दी भाषा न कोई समाधान दे सकी और न ही साधन बन सकी । अगर दस वर्षों में नई पीढ़ी सामने आ जाती है तो आठवें दशक से अबतक चार पीढ़ियाँ गुजर गईं । अङ्ग्रेज़ी को ही सुविधाएं पाने का साधन समझने वाली इन पीढ़ियों ने हिन्दी से किनारा कर लिया । सच ऐसा नहीं हुआ कि यह साहित्य से दूर होना था मगर इस सच से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि यह हिन्दी भाषा और साहित्य से लगभग अछूता रह जाना था । यह पीढ़ी नेट पर पढ़ती है और अङ्ग्रेज़ी में पढ़ती है ।

जब इस अंक को निकालने का विचार आया तो मेरे सामने अपनी किशोरावस्था , जवानी और उसके बाद का समय था । वे किताबें थीं जिन्हें हमारी पीढ़ी या उसके पहले की पीढ़ी गीता और बाइबिल समझती थी । हमने उन्हें खरीदा , पढ़ा और मित्रों को उपहार स्वरूप भी दीं । आज जब किसी कार्यक्रम में लोगों को किताबें दी जाती हैं तो 90 प्रतिशत लोग उन्हें अपनी कुर्सियों पर ही छोड़ जाते हैं । ऐसे में रचनाकार को जान लेना चाहिए कि वह कितना बड़ा और कितना आत्ममुग्ध है ! ख़ैर,

जो किताबें मुझे याद आती गईं , मैंने उनकी सूची बनाई । पत्रिका के कलेवर को ध्यान में रखते हुए इन किताबों पर लोगों को लिखने के लिए तैयार किया । दिक्कत यह थी कि किताबें तो सबने पढ़ीं थीं मगर किसी के पास मौजूद नहीं थीं । कोई पढ़ने के लिए ले गया और वापस करना भूल गया । सबको इन किताबों को खोजना , मंगाना पड़ा । दूसरी बात कि अरसा पहले पढ़ी किताबों को दुबारा पढ़ना और पढ़कर लिखना सभी भूल गए हैं । मुझे इन किताबों की आलोचना , समीक्षा , समालोचना और औपन्यासिक तत्वों